लाल चोंच वाले पंछी

लक्ष्मीकांत मुकुल के भीतर एक बेहद संजीदा और ईमानदार कवि मौजूद है जो जर्जर, दमघोंटू और खूनी व्यवस्था पर पैनी नजर रखता है। इन कविताओं कि खासियत यह है कि ये सामाजिक सरोकारों से जुड़ी होने के साथ-साथ मनुष्य, गाँव-गिराँव, खेत-खलिहान, नदी-नालें, पशु-पक्षी और रिश्ते-नाते, चाँद-सूरज से गुजरती गंगा के जल की तरह हमारे भीतर उतर कर ऊर्जा और उष्मा पैदा करती हैं। हमें आश्चर्य से भर देती है कि कविता इतनी आसान भी होती है क्या?

- बनाफर चन्द्र

लाल चोंच वाले पंछी

(कविता संकलन)

लक्ष्मीकांत मुकुल

(राजभाषा विभाग, बिहार के अंशानुदान द्वारा प्रकाशित)

पुष्पांजलि प्रकाशन

दिल्ली-110053

© प्रकाशाधीन सुरक्षित

ISBN 81-88632-67-8

प्रकाशक : **पुष्पांजलि प्रकाशन**
एल-46, गली नं-5
शिवाजी मार्ग, करतार नगर
दिल्ली-110053

मूल्य : 150.00 रुपये मात्र

संस्करण : सन् 2009

आवरण : एडिटोरियल इंडिया, दिल्ली-91

शब्द-संयोजन : एडिटोरियल इंडिया, दिल्ली-91

मुद्रक : शिव शक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

Lal Chonch Wale Panchhi (in Hindi) *By* Laxmikant Mukul

विषय सूची

1. पांव भर बैठने की जमीन 7
2. पथरीले गांव की बुढ़िया 9
3. हजार चिंताओं के बीच 12
4. उनका आना 14
5. चिड़ीमार 16
6. लुटेरे 18
7. अंगूठा छाप औरतों के लिए विदा-गीत 20
8. धूमकेतु 22
9. जंगलिया बाबा का पुल 24
10. पल भर के लिए 26
11. इंतजार 27
12. तस्वीर 28
13. धुन 29
14. कथन 30
15. धूसर मिट्टी की जोत में 32
16. लाल चोंच वाले पंछी 33
17. कौए का शोक-गीत 35
18. पौधे 37
19. बदलाव 38
20. विटप तरु 39
21. अंधेरी दौड़ में 40
22. कोचानो नदी 41
23. सिंयर-बझवा 47
24. गांव बचना 49
25. लाठी 51
26. रास्ते 53
27. धीमे-धीमे 54

28. पुकार 56
29. परिदृश्य 58
30. गान 60
31. दुबकी बस्तियों की चिंताएं 61
32. उगो सूरज 63
33. बदहवास सोये बूढ़े की कहानी 65
34. प्रसंग 67
35. अंखुवाती उम्मीद 69
36. आत्म-कथ्य 71
37. खोज 73
38. कवच 74
39. तैयारी 76
40. बसंत आने पर 78
41. प्रलय के दिनों में 79
42. जंगल गांव के लोग 80
43. हम जोहते रहते 82
44. उड़न छू गांव 84
45. आग 86
46. खलिहान ढोता आदमी 88
47. कभी न दिखेगा 90
48. आओ विनय कुमार 92
49. विदूषक समय 94
50. दहकन 95
51. सुरक्षित लौट आना 96
52. लुप्त नहीं होता 97
53. डूबन 99
54. बदलते युग की दहलीज पर 100
55. एक युग की कविता 102
56. टेलीफोन करना चाहता हूं मैं 104
57. उमी मझेन 106
58. इधर मत आना बसंत 109
59. पहाड़ी गांव में कोहबर पेंटिंग को देखकर 111

1

पांव भर बैठने की जमीन

यहां अब नहीं हो रही हैं सेंधमारियां
बगुले लौट रहे हैं देर रात अपने घोसले में
पहुंचा रहे हैं कागा परदेश तक संदेशा
कई सालों से गूंजी नहीं है
उल्लुओं की चीत्कार
किसी वारदात का वहां अता-पता तक नहीं

चमघींचवा खुश दिख रहा है इन दिनों
उधेड़ते हुए मरे पशुओं की आखिरी खाल
हड्डी बीनने वाले लोग
अदहन पर चढ़ी दाल में नमक सिझा रहे हैं

राह चलते पेड़ के पत्ते झड़ने लगे हैं
खेतों में दम तोड़ती नदियां
सोख ले रही हैं पहली ही घूंट में पानी की धार
बादलों के टुकड़े
बझ रहे हैं आंख मिचौनी के खेल में
मकई की लंबी गांछों की ओट में दुबका

कोई भूल नहीं पाता गांव की पतली पगडंडी
कबूतरों के झुंड आकाश में घूमने चले जा रहे हैं
क्षितिज के पार सुनने लहरों का संगीत

गेंहू के चौड़े खेतों के बीच
नहीं दिखता बिजू का तना हुआ लोहबान
मेंड़ों पर जाते ही उतर आयी है
पशुओं की तीखी भूख

खाली शाम में अब किसान
बतरस में नहीं उलझे हैं इन दिनों
वे गुनगुना रहे हैं धान ओसाने के गीत
सुनाई देने लगी है शिवाला से
घंटियों के टुनटुनाने की आवाज
वैसे ही लौट रही हैं आस्था की पुरानी यादेंऽऽऽ
चलें हम भी लादे कन्धों पर उम्मीदों के पठार
जैसे मुंह अंधेरे में उड़ती चिड़िया
आखिर खोज ही लेती है
पांव भर बैठने की जमीन।

■■■

2

पथरीले गांव की बुढ़िया

जल रही हैं उसकी बुझती आंखों में
संमत की लपटें
बुढ़िया है वह बथान की रहने वाली
मानों कांप रही हो करवन की पत्तियां

तुम्हें सुनाने को थाती है उसके पास
राजा-रानी, खरगोश, नेवले
और पंखों वाले सांप की
कभी न सूखने वाले ढेर सारी कहानियों की स्रोत
रखी है जंतसार और पराती की धुनें
चक्का झुकते ही
फूट पड़तीं उसकी कंठ की कहरियां

बंसवार से गुजरते ही
मिल जायेगा पीली मिट्टी से पोता उसका घर
दीवालों से चिपके मिलेंगे
हाथी घोड़ा लाल सिन्होरा
फूल पत्तियों के बने चितकाबर चेहरे

मिल जायेंगी किसी कोने में भूल रहीं
उसकी सपनों की कहानियां

एक सोयी नदी है बुढ़िया के
घर से गुजरती हुई
खेत-खलिहान
धान-पान के बीचों-बीच निकलती जाती
वह हो जाती पार नन्हीं-सी डेंगी पर

सतजुग की बनी मूरत है बुढ़िया
उजली साड़ी की किनारीदार
धारियों के बीच झूलती हुई
गुजार ले आयी है
जिन्दगी की उकताहट भरी शाम

रेत होते जा रहे हैं खेत
गुम होते जा रहे हैं बिअहन अन्न के दानें
टूट-फूट रहे हैं हल-जुआठ
जंगल होते शहर से झऊंसा गये हैं गांव
...दैत्याकार मशीन यंत्रों, डंकली बीजों
विदेशी चीजों के नाले में गोता खाते
खोते जा रहे हैं हम निजी पहचान...

सिर पर उचरते कौवे को निहारती
तोड़ती हुई चुप्पी की ठठरियां
लगातार

गा रही है झुर्रियों वाली बुढ़िया
जैसे कूक रही हो अनजान देश से आई
कोई खानाबदोश कोयल
और पिघलता जा रहा हो
पथरा चुका सारा गांव।

■■■

3

हजार चिंताओं के बीच

भोर के खिलाफ
उठता है कोर से धुआं
और धुंधलके को चीरता हुआ
पहुंच आता है मेरे गांव में

मां रोटियां नहीं बेल पाती
सीझ नहीं पाती लौकी उसके चूल्हे पर
तड़फड़ाकर सूख जाते हैं
दीवाल की योनियों में
अंखुवाकर उगे कुछ मदार

भूल जाते पिता
रेत होती नदियों के घाट
धूल भरी आंधियों के बीच
झुंझला जाता है मेरा तटवर्ती गांव

बूढ़ी मां का फौजी बेटा
चला जाता है बीते वसंत की तरह

धुल जाती है कुहरे में
नन्हों की किलकारियां

महुआ बीनती हुई
हजार चिंताओं के बीच
नकिया रही है वह गंवार लड़की
कि गौना के बाद
कितनी मुश्किल से भूल पायेगी
बरसात के नाले में
झुक-झुककर बहते हुए
नाव की तरह
अपने बचपन का गांव।

■■■

4

उनका आना

कोई सदमा नहीं है उनका आना
अंधियारा छाते ही सुनाई दे जाती
अनचिन्ह पंछी की बेसुरी आवाज
जैसे कोई आ रहा हो खेतों से गुजरते हुए
दबे पांव बुझे-बुझे सन्नाटे में

चवा भर पानी में तैरती मछलियां
पूंछें डुलाती नाप लेती हैं नदी की धार
भुरभुरा देते केंचुए मिट्टी की झिल्लियां
डेग भरते केकड़े छू लेते
नदी की अंतहीन सीमाएं

उनका आना नहीं दिखता हमारी आंखों से
वे उड़ते हैं धूलकणों के साथ
हमारे चारों ओर खोये-खोये
वे खोजते हैं गांव-गिरांव
पुरुखों की जड़ें
नदी पार कराते केवटों का डेरा

खोज ले जाते हैं घर के किवाड़ में लगी किल्लियां
जिनके सहारे हम रात भर सपनों में डूबे रहते हैं

इस बाजारू सभ्यता में भी
उनका आना
एक अंतहीन सिलसिला है समाचारों का
उनके आते ही हम
खबरों के कमलदह में तैरने लगते हैं
अनसुने रागों में आलाप भरते हुए।

■■■

5

चिड़ीमार

जब काका हल-बैल लेकर
चले जायेंगे खेत की ओर
वे आयेंगे
और टिड्डियों की तरह पसर जायेंगे

रात के गहराते धुप्प अंधेरे में
आयेगी पिछवारे से कोई चीख
वे आयेंगे
और पूरा गांव फौजी छावनी में बदल जायेगा

खरीदेंगे पिता जब बाजार से
खाद की बोरियां
वे आयेंगे
बोरियों से निकलकर सहज ही
और हमारे सपने एक-एक कर टूट बिखर जायेंगे

वे आ सकते हैं
कभी भी

सांझ-सवेरे
रात-बिरात

वे आयेंगे
तो बुहार के जायेंगे हमारी खुशियां
हमारे ख्वाब
हमारी नींदें

वे आयेंगे
तो सहम जायेगा जायेगा नीम का पेड़
वे आयेंगे
तो भागने लगेंगी गिलहरियां
पूंछ दबाये
वे आयेंगे
तो निचोड़ ले जायेंगे
तेरे भीतर का गीलापन भी
कभी देखोगे
फिर आयेंगे चिड़ीमार
और पकड़ ले जायेंगे कचबचिया चिरैयों को
जो फुदक रही होंगी डालियों पर।

■■■

6

लुटेरे

अब कभी नजर नहीं आते
भयानक पहले की तरह लुटेरे
काले घोड़े पर आरूढ़
और आग बरसाती हुई आंखें

वे फैल गये हैं नेनुआं की लताओं-सी
हमारी कोशिकाओं में
नहीं दिखती उनके हाथों में कोई नंगी तलवार
कड़ाके की आवाज
कहीं खो गई है शायद इतिहास के पन्ने में

लुटेरे चले आते हैं चुपके
लदे बस्ते में बच्चों की पीठ पर
घुसपैठ करते हैं
चाय की घूंट के साथ हमारे भीतर-और-भीतर

इनसे अब कोई नहीं डरता
मुसीबत में भी

ये हमारे दोस्त बन रहे होते हैं
सुखद होता है कितना दिखना इनके साथ
इनके साथ हाथ मिलाना
होता है आत्मीयता का परिचायक

लुटेरे सड़कों पर नहीं दिखते
सुनाई नहीं दे रही
उनके घोड़े की कहीं टाप
वे उतर आये हैं हमारे चेहरे पर
जब सुबह की ताजी हवा
सरसराने को होती..।

■■■

7

अंगूठा छाप औरतों के लिए विदा-गीत

जब बुदबुदा जाती हवाएं आतुर कंठ से
कि हो रहा है आषाढ़ का शुभागमन
उठने लगतीं सूखी हुई आंधियां
अरराने लगता कलूटा दखिनहा पहाड़
टूट-बिखरने लगते अंगने में तुलसी के मंजर
गांव का हर कोना शोर में डूबने लगता

कठिन पलों में भी उबलती हुई गाती रहती
गाती रहती गुस्सैल मनोभावों से
मेघों की गुहार में मंगल गीत
थामे हुए थकान पूरे साल की
खेतों से खलिहान तक हाथे-माथे
मेरे गांव की अंगूठा छाप औरतें

उतरने लगता सूरज उनींदी झपकियों के झीने जाल में
वे गाने लगतीं
हवा के हिंडोले पर बैठकर तैरने लगती पक्षियों की वक्र पंक्तियां

वे गाने लगतीं
गाने लगती तेज चलती हुई लू में चंवर डुलाती हुई

उनके गीतों में अनायास ही उभर जाते
साहूकार के तगादे में अंटते जाते पुरुखों के खेत
कर्ज में डूबते दिखते बगीचे के सखुआ-आम
बह जाते पानी की तेज धार में सपनों के ऐरावत

उनके जाते ही थरथराने लगते तूत के पत्ते
शुरु हो जाता गौरेयों का क्रंदन
फटने लगती सीवान का छाती
भहराई हुई गलियां भी भेंट करने दौड़ जातीं
जैसे कि फूट पड़ा हो धरती का आदिम-राग।

■■■

४

धूमकेतु

उसके टुकड़े तेज धार बरछी की तरह
चले आ रहे हैं हमारी ओर
देखना मुन्ना
अभी टकरायेगा वह धूमकेतु
हमारी धरती से
और हम चूर-चूर हो जायेंगे

चांद-तारों के पार से
अक्सर ही आ जाता है धूमकेतु
और सोख ले जाता है हमारी जेबों की नमी

बाज की तरह फैले उसके पंजे
दबोच लेना चाहते हैं जब हमारी गर्दनें
पड़ जाता है अकाल
बुहार ले जाती है सबको महामारी
और गइया के थन झुराये-से
बिलखने लगते हैं बच्चे

कौवा नहीं उचरता हमारे छज्जे पर
सुगना बंद कर देता है गाना
हमारी जीभ भी पटपटाने लगती है

ऐसे नहीं आता धूमकेतु
ले आता है सदियों पुराना दस्तावेज
जिसमें मिल्कीयत लिखी होती है पृथ्वी
उसी के नाम

साथ लाता है मंदाकिनियां
और पद्मिनियां भी
जलते हुए ज्वालामुखी के क्रेटर-सा
खोज करता है कोई बारूदी सुरंग

हजारों परमाणु बमों का
परीक्षण कर रहा था वह अंतरिक्ष में
अब तुरंत आयेगा
हमारी ओर
अपने लश्करों के साथ

जितना हो सके अब
बचाना मुन्ना मेरी यादें
अपना गांव, अपनी हंसी
और दादी मां की कहानियां
बचाना
बस नुकीली चीख की ही तो देर है।

■■■

9

जंगलिया बाबा का पुल

जेठ की अलसायी धूप में
जब कोई बछड़ा
भूल जाता है अपना चारागाह
तो जम्हाई लेने को मुंह उठाते ही
उसे दिख जाता है
सफेद हंस-सा धुला हुआ
हवा में तैरता जंगलिया बाबा का पुल

दादी अक्सर ही कहा करतीं
कि उनके आने के पूर्व ही
बलुअट हो गयी थी यह नदी
और धीरे-धीरे छितराता हुआ जंगल भी
सरकता गया क्षितिज की ओट में

स्मृति शेष बना यह पुल
कारामात नहीं है मात्र
जिसकी पीठ पर पैरों को अपने
ओकाचते हुए हम

भारी थका-मांदा चेहरा लिए
लौट आते हैं अपने सीलन भरे कमरे में

जब कभी उबलती है नदी
तो कई बित्ता ऊपर उठ जाता है यह पुल
और देखते-देखते
उड़ते-घुमड़ते बादलों के बीच जा
चीखने लगता है
क्या सुनी है आपने
किसी पुल के चीखने की आवाज?
कौंधती चीख
जो कानों में पड़ते ही
चदरें फाड़ देती है

यह मिली-जुली चीख
है बंधुओं
जो हरे-भरे खेत को महाजन के हाथों
रेहन रखते हुए किसान की
और नेपथ्य की घंटी बजते ही
दरक जाते जीवन-मूल्यों की होती है।

■■■

10

पल भर के लिए

नहीं थी उनके लिए
कोई टाट की झोपड़ी
या फूस-मूंजों के घोंसले
वे पंछी नहीं थे
या, कोई पेड़-पौधे
हल जोतकर लौटते हुए मजदूर थे

टूट-बिखर कर गिरते हैं
जैसे पुआलों के छज्जे
धमाकों से उसी तरह
वे पसर गये थे
पोखरे के किनारे पर

ओह! पल भर के लिए
ईख में के छुपे दैत्य
बंद कर दिये होते अपनी बंदूक
वे कुछ भी हो गये होते
आंधी-पानी या खर-पात
जरा-सा के लिए भी
अगर छा गया होता धुंधलका

■■■

11

इंतजार

थका-हारा आदमी
जब भी कभी भारी टोकरी लादे
समीप आने लगता
उसे देखकर न जाने क्यों
घरघराने लगता है
बांस का पुल
मेरे गांव का।

■■■

12

तस्वीर

हाथी के दांत
देखे जा सकते थे चिड़ियाघरों के
अंधेरे में डूबी कंदराओं में

बहाना कुछ भी हो सकता था
कैमरे ताने अपलक खड़े थे लोग
डरी-सहमी और खिली आंखें
अवाक्!

बड़े सुलझाने में लगे थे
अतीत के खाये-फंसे धागे
हम छान आये थे
स्कूल के जमाने की दुबकी स्मृतियां

औचक खड़े थे बच्चे
अगले युग की पुस्तकों में
उन्हें देखनी थी इन
उजले दांतों की तस्वीर।

■■■

13

धुन

मटमैला अंधेरा
घेरा बनाता मौन था
पक्षियों की तड़फड़ाहट से
सूर्यग्रहण के पुराने किस्सों की ताजगी में
डूबता जा रहा था आकाश
बूंदा-बांदी की घड़ी
बेहाथ हो चली थी
कांप रही थी जौ की बालियां
पेड़ भूल रहे थे पतझड़ का मौसम
सारंगी धुन पर
कोई सुबह से ही बैठा गा रहा था
फसलों का धीमा संगीत।

■■■

14

कथन

आसान तो बिल्कुल नहीं
पार हो जाना खिड़कियों से
टहलता चांद अब दुबका था
काले बादलों के मेले में खोया
ट्राफिकों का शोर
खुरेंच देता मौसम का गुनगुना स्वभाव
बसों में हिचकोले खाती
टूट चुकी होती सुबह की भूखी नींद।

घर गांव से दूर भी हो सकता था
जैसे दीखता है अकेले पटिये पर
पसरा बांस का किला

पहाड़ तोड़ते बारूद की चमक से
बचाया जा सकता था आंख-कान
सुना जा सकता था
बीहड़ घाटियों में मचा चिड़ियों का शोर
ठेकेदार के कुत्तों से

छिपायी जा सकती थी दो जून की रोटियां
खेला जा सकता था
धूल-कीचड़ में सने बचपन में खेल
घिसते-पिटते पत्थरों की दुनिया से
लौटा जा सकता था किसी भी रात।

■■■

15

धूसर मिट्‌टी की जोत में

पहाड़ों की निर्जन ढलानों से उतरना
कोई अनहोनी नहीं थी उनके लिए
बीड़ी फूंकते मजदूरों की ओर
मुड़ जाती थी फावड़ों की तीखी धार
सरपतों के घने जंगल में दुबके
मटमैले गांवों की गरमाहट से

सांझ दुबकती जाती उंगलियां गिनते
चटखने लगती गलियां
बिच्छुओं के डंक टूगते ही
आसमानी जिस्म पर्दों की ओट में कांपने लगता ।।

छंटने लगती धुंधली बस्तियों की
सदियों से लिपटी स्याही
चिड़ियों के चोंच दौड़ जाते
बीछने वन खेतों में उगी मनियां
धूसर मिट्‌टी की जोत में
अंकुरण का चक्र फिर घूमने लगता।

■■■

16

लाल चोंच वाले पंछी

नवंबर के ढलते दिन की
सर्दियों की कोख से
चले आते हैं ये पंछी
शुरु हो जाती है जब धान की कटनी
वे नदी किनारे आलाप भर रहे होते हैं

लाल चोंच वाला उनका रंग
अटक गया है बबूल की पत्ती पर
सांझ उतरते ही
वे दौड़ते हैं आकाश की ओर
उनकी चिल्लाहट से
गूंज उठता है बधार
और लाल रंग उड़कर चला आता है
हमारे सूख चुके कपड़ों में

चुन रहे खेतों की बालियां
तैरते हुए पानी की तेज धार में
पहचान चुके होते हैं अनचिन्ही पगडंडियां

स्याह होता गांव
और सतफेंड़वा पोखरे का मिठास भरा पानी

चमकती हैं उनकी चोंच
जैसे दहक रहा हो टेसू का जंगल
मानो ललाई ले रहा हो पूरब का भाल
झुटपुटा छाते ही जैसे
चिड़ीदह में पंछियों के
टूट पड़ते ही
लाल रंगों के रेले से उमड़ आता है घोसला।

■■■

17

कौए का शोक-गीत

घर के सामने ऊंचे मचान पर
आज सुबह से ही बैठा है एक कौवा
दूसरा उड़ता हुआ
चला गया है अमरूद की डहंगी पर
वहां मचा है कांव-कांव

हलवाहे फेर रहे होते हैं
जब परिहथ पर हाथ
ठीक उसी वक्त
हमारे ऊपर उचरने लगता है कौवा
कांव-कांव
कांव-कांव..

उनके बोलते ही कभी
भरकने लगती थी चूल्हे की अंगीठी
सगुन के आगम की ताक में
चहकने लगती थी मां

बरसों का बहका भाई
उनके बोलते ही
शाम ढलने तक
लौट आता था अपने घर

जाने कैसी ये हवा बही
कि गरमाते हुए इस गांव की
गहरी उदासी लिए अब
केवल झंपते दीख रहे हैं कौवे

लोग मगन हो
कर रहे होते हैं अपने काम
उन्हें अब नहीं सुनाई देता
कहीं भी कौवा-गादह

चिंतित है वह बहरा बूढ़ा
कई दिनों से
फुसफुसा कर कहता है-
'कौवों का चुप रहना शुभ नहीं होता'।

■■■

18

पौधे

जैसे पौधे झुकते हैं
हदस के मारे
चाहे लाख दो
खाद-पानी
कभी-कभी साहस की कमी से भी
कुनमुना नहीं पाते हैं पौधे

दिन-ब-दिन
गहराती जाती सांझ की स्याही के
भीतर तक पसारते हैं अपनी जड़े
वे उगते हैं
पत्थरों पर हरी दुबिया की तरह

हमारे अनिश्चितता के
पसरे कुहरे के बीच में
लालसा की तरह उगते हैं पौधे।

■■■

19

बदलाव

गांव तक सड़क
आ गई
गांव वाले
शहर चले गये।

■■■

20

विटप तरु

दूर-दूर तक नामोनिशान नहीं था अंधड़ का
लेकिन वह पास थी
नालियों में खर-पातों से साथ बहती हुई
बिल्कुल करीब पहुंची थी
रेड़ के पौधे की जड़ों में

उसकी बस्ती में तूफान जैसी
शैतानी आत्माओं का बोलबाला था
स्यारों की रूदन
सरसराने लगती थी कानों में
बांसों, पुआलों और सूखे पत्तों की खड़खड़ाहटों में
बिखरता जा रहा था समूचा वजूद

लेकिन वह पास ही थी
धरती के अंदर भी/या, ठीक हमारे पार्श्व में
जहां छिपे होते हैं भविष्य के कुहरे में बीज
वहीं उगा होता है वर्तमान का विटप तरु।

■■■

21

अंधेरी दौड़ में

रेतीली महलें
जूझ रही हैं आंधियों से
खड़खड़ा रही हैं अब भी खिड़कियां
धक्कमधुकी में चड़चड़ा रहे हैं
कमरों को टिकाये सारे दरवाजे
अपनी बाहों के सहारे
समय की तमाम मर्यादाओं के साथ
प्रलय की इस अंधेरी दौड़ में
आते-जाते रहते हैं हम सब भी
अपने कलेजे के टभकते सवालों के द्वंद्व में।

■■■

22

कोचानो नदी

(1)

फटने लगतीं सरेहों की छातियां
डंकरने लगतीं
बधार में चरती हुई प्यासी गायें
कोचानो के घाव तब टीसने लगते

जेठ की तपती दुपहरी में
जब होहकारने लगती लू
चू-पसर आती आंसू की पतली धार
कीच-काच से सूखे घाट भर जाते

हमें अचरज होता
तट के वृक्ष भी विद्रोही भाव में खड़े दीखते
रिसते हुए पानी पी
कैसे जीयेंगी मछलियां
लोग कैसे तैर पायेंगे?
ये सवाल
रूधें गले में फंसे जाते

होने लगती थी जब कभी अंबाझोर बारिश
बाढ़ में सोपह हो जाती थीं फसलें
उखड़ जाते थे
जामुन और गूलर के पेड़
गायब हो जाती थी दिन-दुपहरिया
तटों पर उगी
कंटीले बबूल की झलांस
दहा जाते थे शैवाल और जलकुंभी के रेले

तो भी उग आता था जीवन
यंत्रणाओं से भरे उस युग में भी
मिल ही जाती थी
सांस भर लेने की कोई सुराख
बहने लगती थी नदी
दूर जाते ही गांव से
तीखी धार वन हमारी धमनियों में।

(2)

पड़ाव से उतरते ही
जाने लगता किसी अनचिन्ही बस्ती में
घने बगीचे की टेढ़ी-मेढ़ी
राहों की दिशा में पांव पड़ते ही
बोल पड़ते लोग
'कहां है भाई साहब का मकान?'
और पोंछने लगते
यात्रा भर की थकान अपनी मुस्कानों से
आगे बढ़ते ही मिल जाता

हंसता हुआ कोचानो का कगार
झुरमुटों में टंगे दीखते बया के घोसले
चिड़ियों के झुंड पंख पसारे
चले जाते अमृत फलों के बाग में
जहां बाजार के कोलाहल की
गंध तक नहीं जा पाती।

(3)

झींगा मछली की पीठ पर
तैरती नदी में
नहा रहे थे कुछ लोग

कुछ लोग जा रहे थे
काटने गेहूं की बालियां
पेड़ों की ओट में
अपना सिर खुजलाते

देख रहे थे तमाशा
कुछ लोग
सूरज के उगने
दिन चढ़ने
और झुरमुटों में दुबकने की घड़ी
कंधों पर लादे उम्मीदों का आसमान

पूरा गांव ही तन आया था
उनके भीतर
जो खोज रहे होते थे
कोचानो का रोज बदलता हेलान

क्षितिज की तरफ वह
आवाज भर रहा है अंधा
(आंखों से दीख नहीं रहा उसे कुछ भी)

कुछ लोग चले जा रहे थे तेज कदम
जिधर लिपटते धुंध से
उबिया रहा था उसके
नदी पार का गांव।

(4)

खिड़की से तैरती
आ रही है बधावे की आवाज
ये मंगलकामनाएं नहीं हैं मात्र
शायद रची जा रही हों
विकल्प काल की अग्निऋचाएं

पत्तों में दुबके हैं चूजे
अनंत आकाश
छिना जा रहा है परिन्दों के पंखों से
ठचके बस यात्रियों से
छिना जा रहा है सरो-सामान
लोगों से घर-बार छिना जा रहा है

चला आ रहा है
आडियो-विडियो गेम का कर्णभेदी संगीत
सिमटती जा रही है बच्चों की
कॉमिक्स-बुक्स और जंगली होते स्कूल में पूरी दुनिया

देखो-दूर उधर हवा में लटका
झूल रहा है रावण का अधजला पुतला
कहीं दुहराई न जाए फिर से
लंका कांड की पुरानी पड़ चुकी रीलें

धुप्प अंधियारे में भी
चले जा रहे हैं वे लोग
डूबकियां लगाने कोचानो का गांव
हम भी चलें बंधु...
अब चिड़िया चहचहाने लगी है
हमारी प्रतीक्षा में।

(5)

डर जाता हूं चौंककर गहरी नींद में
कि कहीं रातोंरात पाट न दे कोई
मेरे बीच गांव में बहती हुई नदी को
लंबे चौड़े नालों में बंद करके

बिखेर दे ऊपरी सतह पर
भुरभुरी मिट्टी की परतें
जिस पर उग आये
बबूल की घनी झाड़ियां
नरकटों की सघन गांछे...

सुबह फिराकित करने वाले लोग
खोजते रह जायेंगे नदी के कछार
चकरायेंगे देखकर वहां काक भगौआ
और जंगल में स्यारों की असंख्य मांदें

हकसे-प्यासे पंडुक-समूह
पहाड़ों से उतरेंगे दिन तपते ही
सोते की तलाश में खुरेचेंगे जमीन
अथाह तप्त जल राशि में पकती
मछलियों की भींनी गंध
और कंटीले पेड़ों से जूझते हुए
बहा देंगे अपने रक्त की वैतरणी

कीचड़ में लोटने आयेंगी भैंसें
जब जल रहा होगा सूरज
ठीक हमारे सिर के ऊपर
और नीलगायों के झुंड में
बिला जायेंगी वे अनायास ही

जायेंगे हम कभी उस दुर्गम वन में
अपनी लग्गी से तोड़ लायेंगे दातून
जिस पेड़ में नदी का पानी
पग धोते बहता हुआ
चढ़ आया होगा उसकी फूल-पत्तियों तक
तब कोचानो हमारे दांतों के बीच नाचेगी
और हमारी शिराओं में भी
भागने लगेगी अपनी पूरी विराटता के साथ
घुमाव लेती हुई नीम अंधेरे में।

■■■

23

सिंयर-बझवा

दौड़ रहे हैं उनके पांव
समय के हाशिए की पीठ पर
वे सियर-बझवे हैं
शिकारी कुत्तों के साथ उछलते हुए
जैसे कोई प्रश्न प्रतीक

घुल गये हैं उनके शब्द
स्यारों की संगीत में
उनके चिकरते ही
फूट पड़ती है आदिम मानुष की
धूमिल होती स्वरलहरियां
जो गड्डमड्ड हो चुकी हैं
अनगढ़ी सभ्यताओं से रगड़ खा के

खोता जा रहा है मकई और ईख के खेतों में
उनकी पदचाप
रात गये स्यारों की आवाज
सीवाने पर अब भी

सिसकियों की ओस में भिनती रहती हैं
जैसे खामोशी में दफन होती
चट्टानी खेतों की कब्र में
अनायास ही चले जा रहे हों सियर-बझवे

■■■

24

गांव बचना

बचना मेरे गांव
बाढ़ में डूबते
ओस में भींगते हुए बचना

बच्चों की खिली आंख में
खेतों की उगी घास में
गांव बचना
ताकि हदस न जाये नीम का पत्ता-पत्ता
उजड़ न जाये सुगिया का महकता बाग
भस न जाये कुओं की चौड़ी जगत
मेरे प्यारे गांव!
मलय पवनों के साथ
आ रहीं विषधर हवाओं से बचना
मेरे लौटने तक

सबको नींद में डराते हुए
हजार बांहों वाले दैत्यों से बचना
बचना बूढ़ों की जलती हुई भूख में

बोझ ढोती औरतों की प्यास में
गांव बचना
कि इस युग में कुछ भी नहीं बचने वाला

माटी कोड़ती
सुहागिनों के मंगल-गीत में बचना
बचना दुल्हिन की
चमकती हुई मांग में

बचना
जैसे बच जाती हैं सात पुश्तों के बाद भी
धुंधली होती पूर्वजों की जड़ें!।

■■■

25

लाठी

घर की किवाड़ के ठीक सटे
खड़ी है एक टिकी लाठी
जो पल्ला खुलते ही
जोर से थरथराने लगती है

पिता पूजते थे
इस लाठी को
बीज बोने से पहले
और चल देते थे निडर होकर
रात-बिरात

इसको देखते ही
अभर आता है उनका थका हुआ चेहरा
छूते ही मचल उठता है
मेरा छुटपन

शान है यह लाठी
पिता की खिली हुई मूछों की तरह

जिसमें खोजता हूं
मकई के दानें
पगडंडियों की धूल
कुओं की मिठास
और चिड़ियों की चहचहाकट

खिड़की खोलते ही
नदी की ओर से आता है एक झोंका
फिर तो हमारी नींद में भी
बजने लगती है यह लाठी

कितने काम आती है यह
सबसे बुरे दिनों में भी
जैसे छेद रहा हो
अभावों से भरा हुआ अनंत आसमान

हम सबकी नींव टिकी है
बस इस पर ही
हटते ही इसके यह घर-बार
खंडहर-शेष बच जायेगा
पर कमजोर है यह इतना
जिससे अब की नहीं जा सकती
कभी भी फसलों की रखवाली।

■■■

26

रास्ते

डाले जा चुके खत
डाक की पेटियों में
कल चले जायेंगे वे संवेदित स्वर
पूरब जंघाओं के लाल चीरे से निकलते
तुम्हारे खेत की मेड़ों पर

बादल फुदके होंगे धान वाले
पनीवट की राह में
उछल आये होंगे
जैसे उतावले थे मंडियां जाने को घरों से
निकले किसी दिन चावल के बोरे

मत हकलाना तुम
घूमते हुए मेरे गांव की संकरी गलियां
लौटेंगे कभी उजाले के आस-पास
जैसे दुनिया की सबसे लंबी पगडंडी से
गुजरता रोज सुबह सूरज
उग ही आता है मेरे तिकोन वाले खेत के बीच।

■■■

27

धीमे-धीमे

दूध के दांत का टूटना
सतह पर पसरी दूबों के गले में
बांधने का पुराना खेल था
पुराने किस्से थे नानी के गांव के

ईख की धारदार पत्तियों के बीच डूबती
खेतों की मेड़ें कभी न बन सकने वाली
सीमायें थीं सीवानों के बीचों-बीच

सीना ताने ज्वार के पौधे थे
झलांसों की खेती
न उपजने का आधार थी
कई-कई सालों तक
अधभूखे लोग थे, पेट जलने की
चिंताएं घास चरने गई थीं उन दिनों

उन दिनों चमगादड़ों का चीखना
अपसकुन का संकेत नहीं माना जाता

नहीं की जाती आशाओं में हेरा-फेरी
बबुरी वनों की निपट अहेरी
बेकार की बातें नहीं थीं
लहरों से जूझते समुद्री गांवों में
बच्चों का खोना खेल नहीं माना जाता

कोमल धागों के संबंध
बिखरे नहीं थे उन दिनों
बुझी नहीं थी दीया-बाती की
जलती-तपती लपटें

तब धीमे-धीमे चलते थे लोग
धीमे-धीमे पौधे बढ़ते थे
आंधी धीमे-धीमे चलती थी।

■■■

28

पुकार

चोर बत्तियां घूम गयी थीं
फूस की झुग्गियों की राह में
चले आये थे बच्चे
बधार के कामों से लौटकर
चांद उगा नहीं था
करीब-करीब उगने को था
काली माई के चबूतरे पर खड़े
नीम की पुलुई पर

कबूतरों के जोड़े
बझ गये थे दानें टोहने की होड़ में
बैलों की घंटियां टुनटुना रही थीं लगातार
टूटता जा रहा था नादों में पसरा
निस्तब्धता का जाल

चिड़ियों के बोल गुम थे
बेआवाज था पत्तों का टूटना
खेतों में पसरा पानी लाल हो चुका था

पश्चिमाकाश के सामने
हरियाली सिकुड़ती जा रही थी
झाड़-फुनूस की लताओं में बुझती-सी

पुकार उठी थीं धरती की थनें
जैसे गोहरा रही हो मां की घुटती हुई रूह
घुमड़ो आकाश!
रेत होती नदियों में बह निकले कागज की नाव
जुड़ा जाये छाती देखकर पेड़ों की हरीतिमा।

■■■

29

परिदृश्य

आवाज भरने तक
बच्चों के अधखिले होंठ
कंपकपा जाते थे, गायों की थनें
बादलों वाली रात में चौड़ी हो जाती
खेखरों की आवाजों से
गहन शून्य में फटने लगते थे कान

आलू बोने दिन
ढलने ही वाले थे सर्दियों की शाम
अतिशीघ्र उतरने लगती, बेर की नन्हीं
पत्तियां डुलने लगतीं
बजने लगता अज्ञात कोने में झुरझुरा संगीत

हुक्के फूंकते ऊंघ रहे थे बूढ़े
ओसारे की खाट पर पसरे हुए
मथ रहे थे बचपन की बुझी जोत से
(गुनगुनी सुबह से उदास शाम तक की दंतकथाएं)
दौड़ती बकरियों का अंकन था उनका स्मृति-रेख

बहकती दूर चली जाती दूर पेड़ों की ओट में
सींक-सा ओझल होता चांद तैरने लगता था
तितलियों के पंख बेताब होते थे
गांव था नहरों से घिरा हुआ
आतुर तैरने को फुरगुदी चिरैया की शक्ल में
भावाकाश की नींद में खरांटे भरते हुए

घास काटती औरतें मुंह बाये
देख रही थीं हवा में उछलते
लाल-पीले फतिंगों का मेला
दुधमुहे नन्हें तेज कर रहे थे रोना-धोना
तेजी से भाग रहे दिनों की मानिन्द

देख रहे थे सिरफिरे गवईं बदलते परिदृश्य
आकाशी सूंढ़ में लटके भाग रहे थे घर-द्वार
लोग-बाग गुम हो रहे थे अनजाने में दुबकते
मानों यूं ही चुपचाप!

■■■

30

गान

चली आ रही शाम
अब डूबने को आया सूरज
सहमी हैं सीधी गलियां
कोने-कोने में
कर रहे हैं झींगुर-गान
गांव-गिरांव की नींद में ऽऽऽ
कुनमुनाते दीख रहे हैं बच्चे
मुडेरों पर उचर रहे थे कौवे
गा रहे थे खेतों के पास
कतारबद्ध लोग
कोई पराती गीत
अनसुना राग।

■■■

31

दुबकी बस्तियों की चिंताएं

झांझर आसमान में चिड़ियों के पंख
उड़ान भरते ही बजने लगते थे
तेज चलती हवा के
झकोरों का चलना (हांफना) तेज होने लगता
घरों की भित्तियों से टकराते हुए
मल्लाहों के गीत गूंज जाते, नाव सरकने लगती
मुड़ती दरियाव के झुकाव और खोती हुई ऊंघती
नदी के किनारे की राह पकड़े
बहते पानी में चेहरा नापते बचपन के खोये झाग
बह चुके थे, कुओं में उचारे गये नाम
कुत्तों को काटने के किस्सों के साथ
पहुंचे थे जंगल घूमने की राह में

गर्मी में सूख चली नदी के बीच सिंदूर-आटे का लेप
चढ़ाना जारी रखा मां ने, बहनों की बामारियों की
खबरों को सूरज
रोज सुबह अपनी किरणों के साथ लाता
वन देनी के चबूतरे पर चढ़े प्रसाद

स्यारों के भाग माने जाते
गूंगी बस्तियों के लोग हल की मूठ पकड़े धान की जड़ों की
गीली सुगंध लेने आये मोरियों के धुप्प अंधेरे में बिला जाते
पतंग उड़ाने का भूत, कटी डोरियों में लिपटा हुआ
सारसों के गांव में ओझल हो चुका होता

पहेलियों में दुबकी बूढ़ों की कहानियां
सहेजते बच्चे कौड़ा की कुनकुनी चिनगारियों की टोह में
दूर देश चले जाते
सामने पड़े साल भर के रास्ते को छोड़
छमाही पथरीली पगडंडियां ही उनका साथ देतीं
घरों की परछांही लांघते धुरियाये पांव
सूतिका गृह के गंध की ओर मुड़ जाते
वहां हमारा ठेठपन भी साथ दे रहा होता
तब होती पास; आंखों में चमकती हुई
पहाड़ी में दुबकी बस्तियों की
अंतहीन चिंताएं!।

■■■

32

उगो सूरज

उगो सूरज
बबूल के घने जंगल में
गदरा जाये सारे फूल
महक उठे आम की बगिया
कूकने लगे कोइलर
भैंस चराने जाते हुए
चरवाहों की टिटकारी में
सूरज उगो

भोआर होती धान की बालों में
सूखी पड़ी बहन की गोद में उगो

सूरज ऐसे उगो!
छूट जाये पिता का सिकमी खेत
निपट जाये भाइयों का झगड़ा
बच जाये बारिश में डूबता हुआ घर
मां की उदास आंखों में
छलक पड़े खुशियों के आंसू

गंगा की तराई में
कोचानो के आस-पास
गूलर के छितराये हुए पेड़ों में उगो
सूरज उगो
ताकि मनगरा जाये
अभावों से झवंराया मेरा बदन

सुबह के झुरमुटों में
खेलते हुए सूरज!
कर दो ऐसा प्रकाश
कि चढ़ते अश्लेषा
धनखर खेतों में
मिलने लगे हमें भी सोना।

■■■

33

बदहवास सोये बूढ़े की कहानी

ठूंठे बरगद के नीचे सोया है वह बूढ़ा
चलती है जब गर्मियों की लू
हांफने लगता जैसे लोहसांय में
कोई चला रहा हो भांथी

कह गई थी सांझ ढलते ही उसे सोनचिरैया
कि आयेगी भिनसारे में कभी ठंढ़ी बयार
दिन चढ़ते ही आयेगी
वह इंतजार में था गहुआ लगाये पड़ा हुआ

जैसे सिला करता हो धागे से
अपने निचाट खालीपन का जाला
पनबदरा चले जा रहे थे चुपचाप
वह लटका था सूई और धागे के बीच
समूचा दिन रेतों में दम तोड़ता हुआ चुप था
सभी चुप थे बूढ़े के बारे में
सांझ की तरह लाल कणिकाएं फैलाकर
पूरा आकाश चुप था

मां बताती थी: मेरे जन्म के चार बरस पहले ही
चला आया था वह फटेहाल किसी दोपहरी में
यहीं जमीन के एक चकले पर बिता ली थी पूरी जिंदगी

बूढ़ा चुप था
और उसके हाथ करघे की तरह चलते थे बिन रोके-टोके
निकलती थी कुछ थरथराने की आवाज
जो पसरती हुई सीवान को लांघ जाती थी

वह इंतजार था रह-रहकर खांसता हुआ
पीली सरसों और गेहूं की बालियों के बीच मेड़ों पर बैठकर
देखता रह जाता था बटोहियों को जाते हुए देसावर
बस्ती के सारे भूगोल को वह आंखों से नाप लेता था

उसके चेहरे पर तैर आता दादी की
कहानियों का लाल बरन का कठघोड़वा
अमरूद के फलों से भरा हुआ बगीचा
चमक जाती आंखों की छोर से
पेड़ों से लदी हुई नदियों की कछार
जहां वह दौड़ा करता था
लथपथ और बदहवास।

■■■

34

प्रसंग

आजायबघर को देखते हुए
जब कभी आती हैं हमें झपकियां
चले जाते दूर कहीं दूर
बचपन के दिनों की
मां की कहानियों में

किसी दानव के अहाते में पैर रखते ही
थरथरा जाते राजकुमार के पांव
और हमारे भी
या कभी भाग जाते
मनिहारिन के गांव की
अंतहीन गलियों में
जहां बगल से गुजरती थी नदी
जिसमें डूबकियां लगाते ही खो जाया करते थे

नींद उचटते ही
बदल चुकी होती है पूरी दुनिया
हमारी पहचान खत्म हो चुकी होती है

हमें कोई काम नहीं मिल पा रहा होता
हमारे बच्चे भूल गये होते हैं
स्कूल से निकलते हुए
हमारी घरनियां लूट गयी होती हैं

कितनी झूठी आशाएं थीं
मां की वे कहानियां
सफेद झूठ
जिनको आज संजोते वक्त
सपनों के मोती बिखर जाते हैं
अनायास ही।

■■■

35

अंखुवाती उम्मीद

अपनी पीठ पर दु:खों के
पहाड़ लादे पिता
चले जाते हैं गंगा जल लाने
और गुम हो जाते हैं बीच राह ही
बनचरों के गांव से गुजरते हुए

दिन-रात बैठकर तब तक
अम्मा सेती रहती शालिग्राम की मूर्तियां
और रह-रह रो पड़ती फफककर!

मैं पोंछता रहता अपना पसीना
आंगन में छितराये तुलसी चौरा की
झींनी छांव में बैठकर
आवेदन-पत्र पर फोटो चिपकाता हुआ

काश! ऐसा हो पाता
पिता लौट आते खुशहाल

मां की आंखों में पसर जाती
पकवान की सोंधी गंध
मेरी अंखुवाती उम्मीदों को मिल जाते
अंधेरे में भी टिमटिमाते तारे।

■■■

36

आत्म-कथ्य

देखोगे
किसी शाम के झुटपुटे में
चल दूंगा उस शहर की ओर
जिसे कोई नहीं जानता

दौड़ती हुई रेल के दरवाजे से
लगाऊंगा एक छलांग
और भूल जाऊंगा अपना गांव
खिड़की से झांकता हुआ कमरा

लोग खोज नहीं पायेंगे
कहीं भी मेरा अड़ान
नहीं मिलूंगा पहाड़ों की ओट में
नदी के पालने में झूलते हुए गांव की
गज्झिन गलियों में भी नहीं मिलूंगा
चाहे जितना भेद डालो
उड़ती हुई पतंगों से भरा-पूरा आसमान

मेरे बच्चे गिलहरियों की पूंछे थामे
मुझे खोजेंगे वन-वन रेती-रेती
बित्ते भर चौड़े नाले की तली
बबूलों से लदे दोआबे में भी खोजेंगे

जब चांद गोल बन रहा होगा
धधक रहा होगा क्षितिज का हर कोना
पक रही होंगी आमों की बौरें
मुझे खोजेंगे
श्मशान से लौटते हुए थके-हारे पांव

पहन लूंगा बाबा की मिरजई
ढूंढ लूंगा कहीं से मुरचाया हुआ बसूला
परिकथाओं से मांग लाऊंगा
वायु वेग का घोड़ा
और चल दूंगा उस अदृश्य शहर की ओर
जब सुबह-सुबह का कोहरा छंट रहा होगा।

■■■

37

खोज

तुम्हारे उगे हुए चेहरे पर
सुबह का उजाला
हमें दिखा था हर बार
जिसमें बच्चे अपनी मांओं के साथ
खोज रहे होते थे सपने
हम भी खोज रहे थे कुछ-न-कुछ
दूर कहीं सीवान पर
बाढ़ में घिरा हुआ अपना घर
जिसमें बने थे
हमारे सपनों को सजाने के लिए ताखें

पुरुखों की बटलोही भी अब
खो गई है तुम्हारे साथ
खो चुका है सपनों से भरा हुआ घर
और खोती जा रही हैं तुम्हारी यादें

कहीं इन्हीं जंगलों में खो गये थे तुम
इन जंगलों में तुम्हें खोजना ही होगा।

■■■

38

कवच

लाठी भांजना उनका खेल था
रूखे दिनों की शाम में लौटकर
आंच में पकते बर्तन
दुबक चुके थे आ नींद की गोद में
छत की टपकती बूंदों से
चुहचुहा आये थे ललाट के दाग

बगुलों की तिरछी कतार
फंसती जा रही थी धुंधली होती
नदी के पास की झुग्गियों में

पशुओं के खुरों से उड़ते धूल-कण
कनपट्टियों में भेद रहे थे आकाश
तपी गर्मी में नाचती हवाएं
मुंह बजाती रहतीं
बांस के पत्तों से खेलते हुए

बिरहा अलापते हलवाहे
उदास हो जाते पपड़ी पड़े खेतों को देख

पुरवैया का झकोरा बहने से
पसीजने लगती गमछे में पसीने की गंध

चले जा रहे थे चरवाहों के झुंड
चिड़िया के नाम वाले गांव की राह में
सुनसान पड़ा था वह गांव
अंधियारे की कवच में हर वक्त लिपटा हुआ।

■■■

39

तैयारी

उगा नहीं था चांद
तब भी जला चुके थे
तारे अपने दीये
उस काली रात में
सब निवृत्त हो चुके थे
अपने कामों से

आया मेरे मन में
घूम आऊं खेत-बधार से
देख आऊं मक्का के खेत
सुन आऊं पौधों की बातचीत

उछलते जा रहे थे पांव
मेड़ों की राह पकड़े
तब ही हकबका गये हम
कहीं से बहकर आती
आवाज को सुनकर

जैसे लगा
कि अगिया वैताल की तरह
गप्पें लड़ाते हुए लोग
खो दिये हों मानो
अपनी उम्मीदों के घड़े

खलबला गये थे
पेड़ों पर ऊंघते पक्षी
और गरमा रहा था गांव

डरते हुए हम
बढ़ते गये सीवान की ओर
लगा कि जैसे तैयार हो चुकी हों
खेतों की फसलें
चलने के लिए
उधर घुमड़ रहे थे बादल
टपकने लगा था आसमान।

■■■

40

बसंत आने पर

पीली सरसों से
लहलहा रहा था बधार
और गांव की गलियों में
भभस आया था कुकुरवन्हा का जंगल

सिमट आयी
थी नदी सरेह समीप
पशु भूख के मारे
बुड़ा आते थे चुल्लू भर पानी में मुंह

छतनार वृक्ष पर
बैठी चिड़ियां
टोह रही थी दानें
जिधर खड़ा था बिजूका
अगोरिया करता हुआ

खेतों में खड़ी थी फसलें
दूर से उड़कर चले आ रहे थे
चीलों के झुंड से
भरभरा रहा था गांव।

■■■

41

प्रलय के दिनों में

बक्सा था वह डाकखाने का
जो बना था लौह पत्तरों से
जहां दिन बीतते ही जाया करता था
चिट्ठियां डालने तुम्हारे नाम

आंधियों के पैबंद से
फाड़ लाता था कागज का कोई टुकड़ा
धूप से मांग लाता
चमकती हुइ पेन्सिलें
और सुनसान रेत में बैठकर
प्रलय के दिनों में
कुछ लिखते हुए गढ़ा करता था
मनहर कविताएं!

जला न दिये होंगे उस हादसे में
किसी शाम तुम्हें भी वे लोग
मेरी चिट्ठियों की तरह!।

■■■

42

जंगल गांव के लोग

कोस भर से ही
दीखती है सघन पेड़ों की लकीर
जंगल है वह गांव
झड़बेरियों से घिरा हुआ

वहां लोग चलते हैं
अजगरों की पीठ पर बैठकर
नेवले से होती है उनकी दोस्ती
रात में फद-फदकर
उड़े वाली काली चिड़िया
चली आती है उनकी नींद में

गूंज जाती खलिहानों में
मानर की ताल
खेत जलने लगते
सूख जातीं कांट-कूस की खुत्थियां
दमकने लगता लालछहूं आसमान

जंगल में गांव
गांव में घर
घर के लोग बना लेते
बांस का तीर-कमान
पकड़ लाते लाल ठोर सुगना
हाट घूम आते

जिनके पास नहीं था गांव
घर नहीं था, विरासत में नहीं
मिली थी मानर की थिरकन
वे पसरे हुए जंगल में
तलाश लेते जलती हुई फरनाठियां
और चल देते दबे हुए पांव
अंतहीन राह में।

■■■

43

हम जोहते रहते

खुरदरे दिन थे मेले में घूमने के
रात अपलक नींदे बुझा लेती अनमने
मेथी के भूंजे और सोंठ के स्वाद से
कट जाती थी दोपहरी बेरोक-टोक

पांव भर जाते अजवाईन के मेड़ों पर घूमते वक्त
रहट के पानी से चुल्लू भर बुझा आते
सदियों की तपती प्यासें
खा लेते प्याज, मिर्चा और दो टुकी रोटी
हंसते गाते बंध जाते बैलों की जोत में

मैना की नजरों-सा ताका करते
आकाशबत्ती से निकलती किरणें
सुना करते ग्वाला मां की कराहें
आटा पीसती औरतों के गीतों में डूबते रहते

हम जोहते रहते
सूखे कद्दू के टुकड़े पर दीया-बाती करती

बचपन की मां की सूजती आंखें
खोजते-खोजते थक जाया करते
गांव की पथरीली खोरियों में
धूलों में लोटती कोई पनखोजी चिरैया।

■■■

44

उड़न छू गांव

चले आते हैं वैसे ही
सुख के उजले बादल
कंधे को छिल छीलते हुए

जिसे मेरे पुरखे पुण्यों में
गंगा नहान से पाते थेऽऽ
जलती संवेदना का निर्मम संयोग बना
पॉलिथिन की तरह उड़ता हुआ वो
नदी की मुहाने की ओर ओझल हो जाता

तूफानी सुख वह
मिला था हमें सूखी मिट्टी के ढेर में
जिसमें पानी भेदा करता था तीरें
नमक-मिर्च के चटपटे स्वाद
नशे में बांध लेने को आतुर थे
गुनगुनी धूप घेर लेती कभी भी
अंतहीन होती संदेहों की राहें

स्मृतियों की घाटी में
चली आ रहीं उठती हुई लहरें
जिसे हल के मूठ पकड़े पिता की हराई में
फाल से बिंधते
टोपरे में पाया था हमने अचानक ही
बरसों पहले धुरियाये खेतों में लुढ़कते हुए

रोज बनती इमारतों की तली में
चुपके से फंसी है उसकी जीवात्मा
मकोड़ों के शालवनों की सड़ांध से
बलबलाते टुकड़े की तरह
फेंक दिये गये उपेक्षित
कहीं नजर नहीं आता उड़न छू गांव

दीखता है चारों तरफ
काले-काले धुएं-सा उठता
पश्चिम का काला पहाड़ और
शोर भरी आंधियों का
दूर तक कोई अता-पता नहीं होता।

■■■

45

आग

बज रहा था संगीत
दुकान की बगल वाली गली से
बड़ी तीखी आवाजें
जो छू रही थी ऐतिहासिक हद की सीमाएं

रेलों का दौड़ना जारी था
कुछ इंच भर चौड़ी पटरियों के सहारे
पुल पार की झोपड़ी
छिप जाया करती थी तेज चलते हुए
वाहनों की पदचाप में डूबती हुई

निस्तेज चांद जब गुम होने लगता
अमलतास की लताओं की ओट में
आने लगती कहीं से तेज आहटें
सन्नाटे के गहरेपन को भेदती
थरथराती बूटों की भारी आवाज
कुचलने लगती खिड़कियों के पास की आवाजाही

सरसरा जाती देर शाम की सुखी हवाएं
खाली पड़े टुकड़ों में डोलती हुईं
उगी अनाम घासों की फुनगियां
चौंक जाती बदहवास कोई आबादी
खाली पड़ने लगते सामानों से भरे रैक
सारे घर धमाकों के शोर में डूबने लगते

कोई लौट रहा होता जलते दृश्यों को देखते
अंतहीन राह में जा रही बस की पिछली सीट पर बैठ
मूंगफलियां तोड़ते खो गये थे बच्चे
खाली होती जा रही थी संकरी गलियां
और धुएं-सा उड़ रहा था नुक्कड़ों का शहर
जंगली आग की लपटों में झुलसता हुआ।

■■■

46

खलिहान ढोता आदमी

बोझा लादे
थके-थके सिर पर
पांजा भर कर लादे
मजदूर उबते नहीं इन दिनों
थक जाते हैं
खलिहान से लौटते हुए खाली हाथ

बोझों में लहसी है पूरी-की-पूरी
दुनिया मजदूर की
देखो, वह उसके साथ
कैसे खेल रहा है आइस-पाइस?

हंसिया ठिठकता है
कि कैसे
कट चुके खेत में
चलते ढेले के बीच
खूंटियां ही बची हर बार
केवल साबुत

खूंटियां चुप हैं
पौधे चुप हैं
हंसिया चुप हैं
चुप हैं सन्नाटों की तह में
मजदूर
ढोते हुए खलिहान
अपनी पीठ पर।

■■■

47

कभी न दिखेगा

ताबड़तोड़ टकरा रहे थे
कुछ पत्थर
सामने बहती नदी की धार में
उठती लहरें
हिलकोरे लेती
चली आती झलांसें की ओर

खेत पट नहीं पाया था
पट गई फिर फसलें
बुढ़िया आंधी की आग में
उदास थे हम
कुम्हलाये हुए दूबों की तरह
सन्-सन् बह रही थी हवाएं
ठीक धरती के किनारों पर
उठे काले बनैले हाथी
चले आ रहे थे इधर ही
कोई घूर रहा था बादलों के बीच
मेमने का मासूम चेहरा

दहकता परास-वन
झवांता जा रहा था
कुएं की जगत की ओर बढ़ता हुआ
जहां कठघोड़वा खेलता नन्हका
खो जाता नानी की कहानियों में

बबुरंगों से बचते-बचते
नदी टेढ़ बांगुच हो जाती
गांव से सटी हुई

फैल जायेगा गलियों में ठेहुना भर पानी
उब डूब होने लगेगा
फिर मेरा घर-बार
दह जायेगी मां की पराती धुनें
छठ का फलसूप, कोपड़ फूटता बांस
फिर भी न दिखेगा तुम्हारी नींद में।

■■■

48

आओ विनय कुमार

आओ विनय कुमार
चलो कहीं दूर चलें
चलें 'मुक्तिबोध के कोलतार पथ' से निकलते हुए
गांव की कच्ची पगडंडियों की ओर

क्या चलोगे
देखने कैमूर की पहाड़ियां
पर ले लेना एक मशाल, बंधु
क्योंकि वहां पर दिन-दहाड़े घूमते हैं भेड़िये

मगर देखते ही चलना
सोन के बहते जल में छुपकर रहते हैं घड़ियाल
बचकर पकड़ना रास्ता
ये दबोचकर आंसू बहाना भी खूब जानते हैं

तुम देखोगे पहाड़ों की तानाशाही
जो रोक लेंगी राहें
शिखरों की सीनाजोरी

ऊपर नहीं उठने देंगी तुम्हें
और बंदूकों की आवाजों से डरी
खून से बोथाई नदियों को
देखकर मत डर जाना तुम
यहां तो ऐसे ही होता है अक्सर

अगर तुम थक गये होगे चलते-चलते
तो कर लो जरा आराम
दूर-दूर तक फैली हुई गंगा की रेत पर
पर देखना कहीं ढंक न ले तुम्हें
उधर से आती बवंडर की धूल

अब तो विनय कुमार
हमें तोड़ने ही होंगे
व्यवस्था के ये डील-डाबर
व्यवस्था ही होंगी गचकियां
करना ही होगा आह्वान
उठाने ही होंगे
कविता के खतरे।

■■■

49

विदूषक समय

सबसे सुंदरतम् पक्ष
आसान नहीं होता ढूंढ़ना
सिर लुकाऊ ढलवां छतों पर
कोई चाहे तो उतार ले आये
आकाश की अलगनी पर का टंगा चांद
सबसे कठिन पलों की कल्पना में ही
टिका होता है सबसे कठिन निर्णय
जीवनानुभवों की धुरियों पर घूमते हुए

निर्णय की अवस्था में अनिर्णति स्वप्नों का
झीना-झीना सा जाल ढंकता है
सूर्योदय की पीली किरणों के साथ

सूखे शून्य में
सांसें छोड़ती
जोड़ती संवेदनाओं के तंतुओं का
मनोभावों की लहरियां कम नहीं होतीं
उबलती आंच में भी
इस विदूषक समय की।

■■■

50

दहकन

बारिश का अंटका पानी
ढलानों के दरबे में
नदी की छाड़न का
गंदला जमाव
सूखने लगता है धीरे-धीरे

घमाते अंकुर लेते बीज
तोड़ते हैं मौन ऐसे ही मौके पर
जब गुस्से में दहकने लगता हो सूर्य!।

■■■

51

सुरक्षित लौट आना

केले के टुकड़े-टुकड़े पत्तों के बीच
छिप जाता था मेरा उदास घर
पहाड़ों के पार से चली आती बंसी की धुन
मांड़ के टभकते भात-गंध में
झूमने लगता था समूचा कुनबा

कम नहीं होता समय की
अंधड़ों में सब कुछ सहन कर पाना
सहम कर मौन साध लेना
रात गहराते हुए आंगन में
जूठने पड़े बर्तनों का हवाओं से खड़खड़ाना
और लुढ़कते हुए पसर जाना ओसारे में

कितना मुश्किल होता है सुरक्षित
लौट आना यात्राओं से
आदिम पुनर्जागरण की इन क्रूर घड़ियों में भी।

■■■

52

लुप्त नहीं होता

यहीं झड़े थे सूरजमुखी के फूल
जहां से मुड़ती हैं ये राहें
दीखती है उनकी लंबी चार दीवारी

मक्खियों की भिनभिनाहट के स्वर
गूंजते हैं कानों में
थिरकती है पांवों में लौह-जकड़नें
तड़क उठता है सदियों का संजोया अंतर्मन

घटकों का घर्षण
बहा ले जाता है अपनी धार में सहस्त्राब्दियां
आकार लेते हुए संकल्प
धूल धूसरित होते हुए
विलुप्तता के अबूझ मानचित्र

फूलों की इन क्यारियों से
गुजरते हुए जाना था मैंने

कि इस भयानक समय में भी
लुप्त नहीं होता युगों का बहता इतिहास
विचारों की लुप्त नहीं होती नदियां
सपनों का नीला आकाश कहीं लुप्त नहीं होता।

■■■

53

डूबन

थके चेहरे
उतर आते नींद की संध्या में
बैठ रहे थे पंछी
पंख पसारे
सब्जी के खेत के कोने में

सामने घर था, मंडी
पोस्टरों से चिपका हुआ
शोर शांत बावड़े में
लटका था गत दिनों की चुप्पी थामे
भुतहे घरों में कुंडी से लटकी
आत्मायें सांसों के आर-पार की दिशा में
सीढ़ियां खोज रही थीं
शेष होते वृक्ष-छाया में डूबती हुईं।

■■■

54

बदलते युग की दहलीज पर

तुम्हारे गांव में
कब आया था बसंत
कब फूटी थी बांसों में कोंपलें
कब उगे थे धतूरे के उजले फूल
कब पकी थीं आमों की तीखी गंधित बौरें
कब पहुंचा था नहर का खारा पानी उन खेतों में

जिस जमाने में
गांवों जैसे बनने को आतुर हैं शहर
और शहरों जैसे गांव
जिन घरों में बजती थी कांसे की थाली
गूंजते थे मंडप में ढोल की थाप
जिस जमाने में गाये जाते थे
होरी-चैता-कजरी के गीत
कहीं बैठती थी बूढ़ों की चौपाल

खलिहान और खेतों में
कम होते जा रहे हैं बोझे के गांज

तपती दुपहरी की थका देने वाली राहों में
अब कहीं नजर नहीं आता पंचफेंड़वा आम
पानी-पानी को तरसते राहगीरों को
कहीं नहीं दिखता मिठगर पानी भरा बुढ़वा इनार
फल-पातों से लदे हुए बाग-बगीचे अब नजर नहीं आते

बदलते युग की इस दहलीज पर
मानचित्र के किस कोने बसा है तुम्हारा गांव
किन सड़कों से पहुंचा जा सकता है उस तक?
यह कि उन गांवों तक जाने वाले लाठ-छवर
दूर-दूर तक अब मुझे नजर नहीं आते ऋतुंभरा।

■■■

55

एक युग की कविता

पहाड़ों और नदियों को
सात-सात बार लांघकर
पहुंचा जा सकता था मेरे गांव में
अब का नहीं तब का हिसाब है यह
आकाश छूते छरहरे पेड़ों की ओट में
आदिम लय-ताल पर झूमते रहते लोग-बाग

बारिश अपने समय पर होती
अवसर की ताक में अंखुवाने को चुप
बैठे रहते लौकी के बीज
गाय जब चाहो दूध देती
कोई बच्चा जब रोने लगता
तब तो और

तब नहीं बनी थीं पत्थर की ये सड़कें
तो भी पुरखे चल देते थे झिझक-बगैर
दस कोस दूर गंगा स्नान के पैदल ही
जीने की ललक को वे

फसलों की तरह बचाते थे अगोरिया करते हुए
ताकि हमले न हो जाये बनचरों के

आजादी की लड़ाई में भले न उभरा हो उनका नाम
लड़े थे वे फिर अपने खेतों की हरियाली के लिए
बंजर धरती पर सोना उपजाया था उन्होंने

चाहता हूं बचाये रखना उन भूली स्मृतियों को
समय के इन तेज अंधड़ों से।

■■■

56

टेलीफोन करना चाहता हूं मैं

इतने मीलों दूर बैठकर टेलीफोन से
बातें करना चाहता हूं अपने गांव के खेतों से
जिसकी पक चुकी होंगी फसलें
पर उसका नंबर मेरी डायरी में अब तक दर्ज नहीं

बातियाना चाहता हूं
खलिहान के दौनी में लगे उन बैलों से
जो थक गये होंगे शाम तक भावंर घूमते हुए
उन भेडों से, जो आर-डडांर पर
घासें टूंग रही होंगी

बगीचे के इकलौते आम के पेड़ से
जिसमें हर साल-दो-साल बाद लगते हैं टिकोरे
अपने आंगन में उगे अमरूद को करना चाहता हूं फोन
जिसकी डहंगियों पर बंदर की भांति
उछल-कूदकर गुजारा था अपना छुटपन
पर किसी का नंबर तक मुझे नहीं मालूम

गांव की उस नदी के पास जरूर कोई इंटरनेट होगा
वरना कैसे बातें करती होगी वह बादलों से
रास्ते में मिले पहाड़ के माथे पर
होगी ही वायरलेस की सुविधा
नहीं तो हजार कोस दूर बीहड़ जंगलों से
कैसे आ पाते होंगे जांघिल पंछी
उन चिड़ियों के पास अवश्य ही होगा फैक्स
भला कैसे पहुंचाते होंगे एक-दूसरे घोसले तक संदेश

और नहीं तो कर्कश आवाज करते उन कौवों के पास
होगा ही मोबाइल नहीं तो छप्पर पर उनके उचरते ही
कैसे होता होगा पाहुन के आगन का सगुन
और भरक जाती होगी हमारे चूल्हे की आग

इस सिकुड़ती दुनिया में भी अपने कई प्रिय जनों के
नहीं मालूम है फोन नंबर वगैरह
जिनसे जी भर बातों के लिए तरस रहा हूं मैं, सदियों से।

■■■

57

उमी मझेन

(एक संताली औरत, जिसे हल जोतने के कारण पीटा गया)

तुम्हारे संथाली गीतों में
अब भी क्यों उभर आता है
खोआई का जंगल
जिसमें दीखते हैं
लकड़बग्घे और बिलाव
कुंड़ों की आड़ में
कौवे की पुतलियों-सी तुम्हारी आंखों में
किसके लिए तैरने लगता है निर्मल पानी
कहो उमी मझेन!

तुम्हारे उजड़े खेत में
जिसमें उपजता था पच्चीस मन धान
वंशी में चारे की तरह फंसा था पूरा गांव
आखिर तुम औरत चौआ होकर
हल-बैल से कैसे कर सकती हो
उसकी जुताई-बोआई
परंपरा के गुलाम नुनू टुडू ने

बरसाए थे तुम्हीं पर न साही के कांटे
जिसकी मारक क्षमता से
भरभरा गयी थी तुम
भरभरा गयी थी पूरी औरत बिरादरी
और तमाशबीन बना था गांव

तुम्हारे हिस्से में नहीं मिला
तीर-धनुष का संधान
न चला सकती हो उस्तरे
न ही बजा सकती हो मांदल और ढोल
न दे सकतती हो बेदिका पर
पशुओं की बलि
न खा ही सकती हो
वार्षिक पूजा के प्रसाद
न छार सकती हो बारिश में छान-छप्पर
नहीं तो कतर दिये जायेंगे
तुम्हारे दोनों ही कान

पति की अनुपस्थिति में जब
हल जोतने गयी थी डेढ़-बिगहे जमीन पर
तो बैलों के साथ बांध कर
क्यों लगवाये गये तुमसे ढाई चक्कर
जानवरों की तरह खल्ली-भूसा
खाने पर तुम्हें ही क्यों किया गया मजबूर
जंगली स्थान की इन
लाल चींटियों का दंश
तुम्हें बिसाता नहीं है उमी मझेन!

गरुओं की तरह घसीटे जाते हुए
खाते हुए लात और छड़ियां
चीखते-चिल्लाते हुए
नाराज करते हुए मांझी
और इलाके के देवता को
आखिर क्या पाना चाहती हो तुम
अकाल कि महामारी
आखिर किस घड़ी के लिए
अंटी में खोंस कर लायी थी
बिच्छू-डंक की दवा
अलकुली का बीज कूंचकर!

'जल उठते पर्वत तो देखती सारी दुनिया
कोई नहीं ताकता
इस दुखियारी मन की ओर'
-गाया करती थी तुम ही
कि कब टूटेगा यह पहाड़ धधकता हुआ
कि कब छितराएंगे अलकुली के बीज
फांड़ से छिटककर
कब फिरेंगे संथाली लड़कियों के दिन
तुम ही सच-सच बता दो न उमी मझेन!।

■■■

58

इधर मत आना बसंत

घुमड़ता हुआ उठ रहा है कैसा यह धुआं
शाम की इस मनहूस घड़ी में
गांव के दक्षिणी छोर से
घिर आया है बादलों का शोर
बिजली की चौंधी चमक ने
कुचल दी है सबकी धड़कनें

धमाकों की आर्तध्वनी से
थर्रा गये हैं बगीचे के ये पेड़
नहर का पानी पसरी रेत में
दुबक चुका है
केंचुए, घोंघे और केकड़े-सा
मुरझा चुके हैं प्राण-प्राण बारूदी आंधी की
आंच में

दूर-दूर तक फैली हैं
चीत्कारों के बीच चांचरों की चरचराहटें
फूस-थूनी-बल्लों से ढंकी दीवालों पर

पसर रही हैं रणवीर सेना की शैतानी हरकतें
संवेदनाओं के पर रौंदे जा रहे हैं इस कुहासे में
बेलछी, बथानी, बाथे बना यह मेरा गांव
आज लथपथ है खून के पनालों से
रायफलों, बमों, कारतूसों की धधक में
झुलस चुका है लहलहाता हुआ पूरा टोला
लेंबे बनैले बांसों की कोर से आहत
खड़बड़ाने लगे हैं सारे घर के नरिया-खपड़े
समय पुरुवा हवा की तरह
पीठ में भाला भोंक-कर
गरज रहा है सांय-सांय, हांय-हांय!

बसंत तुम मत आना मेरे गांव में
तितलियां इधर न आना अपना पंख गंवाने
चीलों के झुंड उतरते ही
श्मशान की भांति पटी लाशों से
बिलख रहा है मेरा छोटा-सा आंगन

यह किसकी आवाजें आ रही हैं सरेह में
गेंहूं के खेतों में लगे मजूरों की
और क्यों दौड़ते आ रहे हैं कुत्तों के समूह
इधर मत आना बसंत
तितलियां इधर मत आओ तुम भी
प्रचंड झंझावात ने घेर लिया है
सारी धरती को!।

■■■

59

पहाड़ी गांव में कोहबर पेंटिंग को देखकर

पहाड़ी फटान को देखते हुए
कहा था मित्रों ने
कि जरूर किसी बिसभोर चहवाहे ने
बिरहा गाते हुए बना दिया होगा
कंदरा की इन छतों पर कोहबर-चित्र।

घने बीहड़ जंगल में
दुबका होता है सदियों का रक्तरंजित इतिहास
जहां खतरनाक वृत्तियों के राजकुमार
हाथियों से फसलों को रौंदते हुए
करते होंगे हिरणों के हिंसक अहेर
तब किसी सरहंग चरवाहे ने
कैसे किया होगा
'कनुआ-कनुनिया' सा रतिकर्म का साहस

...लाठी कमर थामे दूर ताकती है पहाड़ी
चमक उठता है भोर का उजास
डोलने लगती है खिरनी की पत्तियां
चहकने लगता है पहाड़ तक पसरा हुआ गांव...

प्रेमिका के विरह में वह पागल रंग डाला होगा
बांस व सूअर के बाल की कूंची से
डुबोया होगा बार-बार किसी मटके में उसे
सहेजा होगा सजगता से कंदराओं को
गेरूए-काले और सफेद परतों की रेखाओं में
सिर उठाती फाटियों पर गौर करते ही
दीख जाती हैं
घोड़े-मगर, तोते, हिरणों की छायाएं
भागता जाता दुरंगी नीलगायों का झुंड
बिखरे होते हैं
लवंग-पान व सुपारी के खंड
पुरइन के पात डोलते हैं समय के साथ
नाचते हैं जिसमें नर्तक
होता है गैंडों का आखेट
होती एक पालकी, जिसे ढोते हैं कहार

पूरा युग ही उतर आता है
हमारी इन आंखों में

दो टुक सुनाया था उस हलवाहे ने
जोड़ते हुए आल्हा की कड़ियों में
लोरिक-चंदा की प्रेमलीलाएं
जिसने सजाये थे मंड़वे
और मिलन के पूर्व लेप दिये थे चट्टानों पर
जिनसे उभर आती हैं अब तक आकृतियां
जैसे धुंधले पड़ते जा रहे रिश्तों के युग में
अब भी कहीं दीख जाता है 'प्रेम'
जी उठती है पृथ्वी
अब भी अपनी संभावनाओं के साथ।

■■■